International Journal of Sanskrit Research 2023; 9(6): 224-229

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2023; 9(6): 224-229
© 2023 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 19-10-2023
Accepted: 23-11-2023

अरुणकुमार चौबे
शोधच्छात्र, संस्कृतविभाग,
डॉ० राममनोहरलोहिया
अवधविश्वविद्यालय, फैजाबाद,
उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
अरुणकुमार चौबे
शोधच्छात्र, संस्कृतविभाग,
डॉ० राममनोहरलोहिया
अवधविश्वविद्यालय, फैजाबाद,
उत्तर प्रदेश, भारत

आर्थिक जीवन के परिप्रेक्ष्य में वेदकालिक निदर्शन

अरुणकुमार चौबे

सारांश
वेद भारतीय संस्कृति के मूल स्रोत है, इनकी प्राचीनता भारत में ही नहीं अपितु विश्व विश्रुत है क्योंकि भारतीय के अतिरिक्त अनेक विदेशी विद्वान् भी प्रारंभिकता, वैज्ञानिकता, तार्किकता और प्रामाणिकता की अपेक्षा से भारतीय वेदों की ओर प्राय: गहरी अपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। यही वेद हमारी सभ्यता को उच्च कोटि तक पहुँचाने वाले ग्रंथ-रत्न हैं। इन्ही से पुराण- इतिहास, धर्म- दर्शन, ज्ञान-विज्ञान, शास्त्र-काव्य आदि विविध धाराएं विभिन्न रूपों में प्रवाहित हुई हैं। सनातन धर्म के आचार-विचार, रहन-सहन, धर्म-कर्म तथा व्यावहारिक जीवन के समस्त पहलुओं को भली-भाँति समझने के लिए वेदों का ज्ञान आवश्यक है। वैदिककालीन आर्थिक जीवन को ध्यान में रखते हुए ऋग्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, ब्राह्मण, आरण्यक, आदि भारत के संस्कृति को सुरक्षित रखने वाले प्रत्येक ग्रंथों से ग्रहण करके प्रस्तुत किया गया है। जिससे वैदिक काल के ग्रामीण तथा नागरिक व्यवस्थाओं में अर्थव्यवस्था की क्या? स्थिति थी इस प्रश्न का स्पष्टीकरण होता है।

कूटशब्द : वेद, ज्ञान-विज्ञान, शास्त्र-काव्य, संस्कृति, सनातन धर्म

प्रस्तावना
प्रत्येक समाज अथवा राष्ट्र की अर्थनीति की सुव्यवस्था ही स्थायी आर्थिक गौरव का आधार होती है। आज अखिल विश्व किसी भी देश का वास्तविक समृद्धि तथा विकास का पैमाना उसकी आर्थिक-समृद्धि और आर्थिक-विकास को मानता है। इसीलिए आज किसी भी समाज अथवा राष्ट्र के लिए आर्थिक आँकड़े महत्त्वपूर्ण प्रतीत होते हैं। यह लेख वेदयुगीन आर्थिक जीवन पर दृष्टिपात करने का एक प्रयास है। वैदिक युग की आर्थिक स्थिति अथवा जीवन के ज्ञान हेतु अर्थोपार्जन के साधन तथा व्यवसाय आदि सभी माध्यमों पर विचार करना होगा।

इसी प्रकार इस शोध पत्र के विषय-चयन में अन्य नैकाधिक कारण हैं –

1. विषय से संबंधित सामग्री की उपलब्धता की सुलभता तथा शोधकर्त्ता की जिज्ञासा
2. प्राचीन आर्थिक नीतियों से संबंधित किञ्चित् वैदिक संदर्भों को अन्वेषणकर्त्ताओं के सुलभता के लिए एकत्र उपस्थापित करना
3. प्राचीन भारत में समाज की आर्थिक एवं तत्कालिक व्यावहारिक रेखांकन करना
4. क्या वैदिककाल में भी अर्थव्ययस्था पर विचार किया गया था इस समस्या के समाधानार्थ उक्त विषय को शोध पत्र हेतु चयन किया गया है।

यह शोध पत्र आज की परिदृश्य में अत्यंत महत्त्वपूर्ण अर्थव्यस्था पर वैदिकदिशा प्रकाश डालता है जिससे अध्येता को आधुनिक एवं प्राचीन कालिक अर्थव्यस्थाओं में तुलनार्थ सहायक हो सकेगा इस लिए प्राकृत शोधपत्र का विषय औचित्य एवं महत्त्वपूर्ण है।

वैदिक वाङ्मय (ऋग्वेदादि) तथा इससे संबंध रखने वाले भारतीय ग्रंथों मे प्राप्त होने वाले अकाट्य संदर्भों को लक्ष्य करके प्राचीन भारतीय मुख्यत: वैदिक काल में ऋषियों द्वारा मंत्रात्मक रूप से अर्थव्यवस्था पर दिए गए विचारों का वर्णन करना इस शोध पत्र का उद्देश्य है।

वैदिक आर्य उस अवस्था को पार कर चुके थे जिसमें मनुष्य अपनी क्षुधाशान्ति के लिए फल-फूल पर निर्भर रहा करता था अथवा पशुओं के शिकार का सहारा लेता था। वे लोग सुव्यवस्थित तथा सामूहिक रूप से रहने वाले समाज में सुसंगठित समाज के सदस्य हो चुके थे।

प्रारम्भिक वैदिक युग में शिल्पों एवं व्यवसायों का उदय हो चुका था और इससे सम्बन्धित संघों या वर्णों का अस्तित्व भी प्रकाश में आ चुका था। एक संदर्भ से ज्ञात होता है कि आजीविका के लिये एक ही परिवार के विभिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न व्यवसायों को अपनाने के लिए स्वतंत्र थे तथा उन्हें किसी विशेष वर्ग या जाति के अन्तर्गत परिगणित होने की आवश्यकता नहीं थी। इससे उनके व्यक्तित्व एवं सम्मान पर भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। वर्णों के आधार पर कर्म को निर्धारित करने की परम्परा को ब्राह्मण ग्रन्थों ने स्थापित किया स्वैच्छिक रूप में स्वीकृत वैदिक समाज में प्रचलित एवं विकसित शिल्प व्यवसायों की जानकारी प्राप्त कर तत्कालीन आर्थिक प्रगति का सहज ही में पता लगाया जा सकता है। जिस समाज में अपनी शक्ति, क्षमता, दक्षता तथा अभिरुचि के अनुसार अपने लिये कोई भी कर्म चुनने हेतु एक ही परिवार के विभिन्न व्यक्ति स्वतंत्र हैं, उस समाज की आर्थिक स्थिति निश्चित ही सुदृढ़ एवं सुव्यवस्थित होगी। इससे स्पष्ट है कि प्रारम्भिक वैदिक युग में व्यवसाय वर्णगत तथा जातिगत नहीं थे। वैदिक युग में शिल्पों एवं व्यवसायों का बहुत ऊँचे स्तर पर विकास हो चुका था तथा बड़े-बड़े उद्योगों के अतिरिक्त छोटे-छोटे गृहशिल्पों एवं कुटीर उद्योगों का समस्त वैदिक भारत में विस्तार हो चुका था। गृहशिल्प, काष्ठकला, चटाई बुनना, चर्म उद्योग, ऊनीवस्त्र उद्योग, धातु उद्योग इत्यादि विभिन्न उद्योगों का विकास तत्कालीन आर्थिक प्रगति के परिचायक हैं-

कारुरहं ततो भिषगुपलप्रक्षिणी नना। नानाधियो वसूयवोऽनु गा इव तस्थिमेन्द्रायेन्दो परि स्रव॥[1]

वैदिक गाँवों की आर्थिक स्थिति के सम्बन्ध में कम सूचनाएं प्राप्त होती हैं। 'ग्राम' शब्द का अर्थ कहीं-कहीं 'मनुष्यों का समूह' भी ग्रहण किया गया है।

स ग्रामेभि: सनिता स रथेभिर्विदे विश्वाभिः कृष्टिभिर्न्व१द्य। स पौंस्येभिरभिभूरशस्तीर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती॥[2]

कुछ वैदिक मंत्र यह स्पष्ट करते हैं कि भूमि तब व्यक्तिगत सम्पत्ति होती थी और उस पर पूरे परिवार का अधिकार होता था। गाँवों की सुरक्षा व्यवस्था का दायित्व राजा पर होता था। अतः राजकीय विशेषाधिकार की प्राप्ति के लिए गाँवों में राजा का एक प्रतिनिधि नियुक्त हुआ करता था। इन्हीं प्रतिनिधियों (प्रिय पात्रों) द्वारा जमींदारी प्रथा का उदय हुआ। सभी ग्रामवासी राजा के अधीन होते थे और गाँवों से राजा को अंशदान निश्चित प्राप्त होता था जो एक आर्थिक संकेत है –

एमं भजे ग्रामे अश्वेषु गोषु नष्टं भज यो अमित्रो अस्य।
वर्षम् क्षत्रियाणामयमस्तु राजेंद्र शत्रु रन्धय सर्वमस्मय॥

अर्थात् - हे इन्द्रदेव ! आप इस क्षत्रिय को जनसमूह, गौओं और अश्वों की संरचना से अलग करके और इसके रिपुओं को बनाकर तैयार करें। यह क्षत्रिय गुणधर्म का आदर्श हो। इसके सभी रिपु और राष्ट्रों को आप इसके अधीन करें। तथा पुन: वैदिक ऋषि अपने काल के राजा को धनवान् बनाने की प्रार्थना आर्थिक संपन्नता हेतु ही परमेश्वर से इस प्रकार करता है-

अयमस्तु धनपतिर्धनानामयं विषं विषपतिरस्तु राजा।
अस्मिनिन्द्र मही वर्चसि धेह्यवर्चसं कृणुहि शत्रुमस्य॥

अर्थात्- यह राजा सोने, चाँदी आदि धन और प्रजा का स्वामी हो। हे इन्द्रदेव ! आप इस राजा में शत्रुओं को हराने वाला तेजस स्थापित करें॥[3]

वैदिक युग की भौगोलिक तथा आर्थिक स्थिति के परिचय में समुद्र, नदी, नद और जनपदों के अतिरिक्त नगरों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनमें से अधिकांश की ऐतिहासिक वास्तविकता भी प्रमाणित है किन्तु कुछ नगर ऐसे हैं जिनकी भौगोलिक स्थिति अस्पष्ट एवं अनुमानगम्य है क्योंकि जिन संदर्भों एवं आधारों पर उनका उल्लेख हुआ है, वहाँ उनके परिचय का कोई साधन उपलब्ध नहीं है।

परम्परा से अब तक विभिन्न शास्त्रकारों तथा अर्थवेत्ताओं ने इस धरती को 'रत्नगर्भा वसुन्धरा' कहा है। वैदिक कवि पृथ्वी के इस स्वरूप से सुपरिचित था। उसे भलीभाँति ज्ञात था कि पृथ्वी के गर्भ में सम्पत्ति का अपरिमित भण्डार है।[4] सम्पत्ति से परिपूर्ण होने के कारण उसको 'वसुमती' कहा गया है। इसी कारण एक मंत्र में वैदिक कवि रत्नगर्भा

वसुन्धरा से विविध मणि, सुवर्ण, धन-सम्पत्ति और विपुल वैभव की याचना इन शब्दों में करता दिखाई देता है-

निधिं बिभ्रती बहुधा ग्रहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे।
वसूनि नो वसुधा रासमाना देवी दधातु सुमनस्य माना॥5

अस्तु ज्ञात होता है कि आज ही नहीं, वैदिक युग में भी आर्थिक जीवन की उन्नति के साधन मणि-सुवर्ण आदि धातुओं की उपयोगिता को स्वीकार किया गया था। वस्तुतः देखा जाय तो जब से मनुष्य का धातुओं से सम्पर्क हुआ, तभी से उसका आर्थिक जीवन आरम्भ हुआ और उन्हीं के न्यूनाधिक्य पर उसके आर्थिक जीवन का हास-विकास निर्भर रहा। जहाँ तक वैदिक युग की आर्थिक स्थिति का सम्बन्ध है, उसका प्रौढ़ परिपक्व रूप भी देखने को मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक युगीन भारत में मुद्राओं द्वारा आदान-प्रदान होता था तथा उन्हें दान में भी दिया जाता था। आर्यों की अर्थनीति के आदर्श उदाहरण ऋग्वेद में देखने को मिलते हैं।[6]
ऋग्वेद की एक ऋचा में उल्लेख हुआ है कि रुद्र के गले में सोने के निष्कों (सिक्कों) का हार शोभायमान है तथा उसमें विविध आकृतियों की स्वर्णमुद्राएं गुथी हुई हैं।

अर्हन्बिभर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम्।
अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति॥7

इसी प्रकार ऋग्वेद के एक अन्य मन्त्र में विभिन्दु नामक राजा द्वारा चालीस हजार और आठ हजार निष्क दान दिये जाने का उल्लेख हुआ है जो प्राचीन भारतीय समाज तथा उसके नीति नियमों में भी आर्थिक समृद्धता को प्रस्तुत करता है-

शिक्षा विभिन्दो अस्मै चत्वार्ययुता ददत्। अष्टा परः सहस्रा॥8

केदारखण्ड में स्वर्णादि धातुओं से निर्मित घरों और ताम्रमय पर्वतों का उल्लेख हुआ है इस प्रकार भौगोलोलिक दृष्ट्या भी ऋषियों को ज्ञान था कि भूमि भी आर्थिक समृद्धता का स्रोत है -

स्वर्णादिधातुनियास्तथा ताम्रमया नगाः।9

इस प्रकार वैदिक युग की आर्थिक प्रगति मैं धातुओं का महत्वपूर्ण योगदान है।
वैदिक युग के आर्थिक जीवन में यात्रा और व्यापार का भी महत्त्वपूर्ण स्थान था। व्यापार की उस प्रारम्भिक अवस्था में वस्तु विनिमय ही उसका एकमात्र रूप था वस्तुओं के बदले वस्तु खरीदी जाती थी और इसी अदला-बदली के माध्यम से वैदिक व्यापार चलता था। यात्रा और व्यापार का क्षेत्र इतना उन्नत हो चुका था कि स्थल मार्ग तथा जल मार्ग दोनों के द्वारा माल का यातायात होता था स्थल मार्ग से वस्तुओं के यातायात के लिये बैलों, घोड़ों, गधों, खच्चरों और भेड़ों का प्रमुख रूप से उपयोग किया जाता था। रथ आदि वाहनों तथा हल चलाने के अतिरिक्त पशुओं पर सामान लादकर एक स्थान से दूसरे स्थान को लाया ले जाया जाता था। घोड़ों और कुत्तों की पीठों पर कागज ढोने का स्पष्ट उल्लेख ऋग्वेद में हुआ है।

स नो वाजेष्वविता पुरूवसुः पुरस्थाता मघवा वृत्रहा भुवत्॥10

व्यापार एवं यातायात का प्रमुख माध्यम यद्यपि स्थल मार्ग ही था किन्तु जल मार्ग द्वारा भी उसका क्षेत्र पर्याप्त विस्तृत हो चुका था। इसके अनेक प्रमाण वेदों में सुरक्षित हैं। वैदिक काल में पणि लोग (व्यापारियों का एक वर्ग) जलमार्ग तथा स्थल मार्ग से वस्तुओं का आदान-प्रदान किया करते थे। व्यापार की वस्तुओं में खेती तथा उद्योग-धन्धों से उत्पन्न वस्तुएं ही होती थीं। वैदिक काल में बाजार अवश्य थे, क्योंकि अनेक स्थलों पर वस्तुओं के क्रय-विक्रय में मोल-भाव करने का उल्लेख मिलता है। जो शर्त एक बार दुकानदार एवं ग्राहक के बीच निश्चित हो जाती थी, वह कदापि तोड़ी नहीं जाती थी।

स सनयः स विनयः पुरोहितः स सुष्टुतः स युधि ब्रह्मणस्पतिः। चाक्ष्मो यद्वाजं भरते मती धनादित्सूर्यस्तपति तप्यतुर्वृथा॥11

ऋग्वेद के अनेक संदर्भों से ज्ञात होता है कि आर्य लोग समुद्र यात्रा करते थे।[12] ऋग्वेद में चार समुद्रों का उल्लेख है।[13] ऋग्वेद के दो सन्दर्भों से ज्ञात होता है कि आर्य लोग इन चारों समुद्रों में घूमकर लाभ की इच्छा से व्यापार करते थे।[14] जलयान के रूप में नौका का उल्लेख विभिन्न ग्रन्थों में व्यापक रूप से हुआ है।[15] इन सन्दभी से स्पष्ट है कि नदियों को पार करने के लिये तब नौकाओं का उपयोग किया जाता था। एक संदर्भ से ज्ञात होता है कि नौका लकड़ी (दारू) की बनी होती थी।[16]
इस प्रकार नौका द्वारा नदियों तथा समुद्रों को पार करने तथा व्यापार करने के अनेक संदर्भ मिलते हैं। इन उल्लेखों से स्पष्ट होता है कि वैदिक युग की व्यापारिक स्थिति अत्यन्त उन्नत हो चुकी थी। न केवल स्वदेश में अपितु समुद्री मार्गों द्वारा द्वीपान्तरों में भी उसका प्रवेश हो चुका था। यह भी अवगत होता है कि अत्यन्त प्राचीन काल में ही वैदिक आर्यों

ने समुद्री मार्गों का पता लगा लिया था तथा उनके द्वारा आवागमन के साधनों का भी विकास कर लिया था। व्यापार के लिये विनिमय के माध्यम के रूप में गाय की महती उपयोगिता थी परन्तु किसी प्रकार के सिक्कों का भी चलन उस समय अवश्य था, इसके अनेक प्रमाण वैदिक ग्रन्थों में मिलते हैं। जैसे- 'निष्क' निश्चित रूप से विशिष्ट प्रकार की मुद्रा का ही बोधक है।[17]

एक मंत्र में प्रयुक्त 'मना' भी किसी प्रकार का सिक्का ही जान पड़ता है। आर्यजन मोती से भली-भाँति परिचित थे। घोड़ों के अलंकरण में मोतियों का प्रयोग होता था तथा ऐसे अलंकृत घोड़ों को 'कृशनावन्त' कहते थे।

मदच्युतः कृशनावतो अत्यान् कक्षीवन्त उम्रक्षन्त बज्रा।[18]

अथर्ववेद में मोती पैदा करने वाले शंख (शंखकृशनः) का उल्लेख है।[19] जो समुद्र से लाये जाते थे और ताबीज बनाने के काम में प्रयुक्त होते थे। मोती दक्षिण भारत के समीपस्थ सागर के किनारे पैदा होता है। ऐसा जान पड़ता है कि आर्य लोग समुद्र के रास्ते आकर इस मूल्यवान् वस्तु को खरीदते थे। उस समय ऋण लेने की भी प्रथा थी। विशेषत: जुआ खेलने के अवसर पर ऋण न चुकाने का परिणाम बहुत बुरा हुआ करता था। व्याज की दर का ठीक से पता नहीं चलता किन्तु एक जगह ऋण के आठवें भाग (शफ) तथा सोलहवें भाग (कला) को चुकाने की बात मिलती है।[20]

परन्तु यह स्पष्ट रूप से ज्ञात नहीं हो पाता कि यह ब्याज का भाग था या मूलधन का पूर्वजों द्वारा लिये गये ऋण उनके वंशजों द्वारा चुकाये जाते थे। पणि लोग उस समय व्यापार के लिये प्रसिद्ध थे। वे ऋण देते थे परन्तु व्याज बहुत अधिक लेते थे, इसीलिये वे ऋग्वेद में 'वेकनाट' कहे गये हैं-

कदु महिद्रष्टा अस्य तविषीः कदु वृत्रघ्नो अस्त्रितः। इन्द्रो विश्वानबेकनातॉं अहरदृश उत क्रत्वा पणिरभि ॥।[21]

निरुक्त के अनुसार 'वेकनाट' सूदखोरों को कहते थे जो अपने रूपयों को दुगुना बनाने की कामना करते थे-

वेकनाटाः खलु कुसीदिनो भवन्ति द्विगुणकारिणो वा द्विगुणदायिनो वा द्विगुणं कामयन्ते इति वा।[22]

वैदिक आर्य कृषिजीवी थे, वे कृषि को बड़ा महत्त्व देते थे। 'कृष्टि' शब्द से आर्यजनों के कृषक होने का प्रमाण मिलता है।[23] कृषि को अपनाना आर्यत्व एवं श्रेष्ठत्व की पहचान थी। समाज के सभी वर्गों के लोग जीवनदायिनी धरती के प्रति आदर-सम्मान का भाव रखते थे। कृषि कार्य को न करने वाले अथवा उसको हीन दृष्टि से देखने वाले लोगों को समाज में ऊंचा दर्जा नहीं दिया जाता था। वैदिक जन-जीवन कृषि पर अवलम्बित होने के कारण वेदों तथा वैदिक साहित्य में धरती के प्रति श्रद्धाभाव से परिपूर्ण उद्गार प्रकट किये गये हैं। ऋग्वेद की एक ऋचा में कहा गया है कि यह विशाल धरती हमारी माता है।[24] इसी प्रकार 'पृथिवी मेरी माता और मैं उसका पुत्र हूँ-

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।

अथर्ववेद की यह ऋचा आज भी धरती के प्रति भारतीयों का असीम प्रेमभाव प्रकट करती है।

वैदिक आर्यों के कृषि-प्रेम के अनेक उदाहरण वेदों में देखने को मिलते हैं। वैदिक कवियों ने 'खेती करो' (कृषिमित् कृषस्व) अभियान चलाकर समाज को कृषि की ओर प्रेरित किया।[25] कृषि-जीवन की इस प्रगति ने तत्कालीन जन-जीवन को आत्मनिर्भरता प्रदान की। इसके अतिरिक्त दुर्व्यसनों में फँसे हुये लोगों को अच्छे मार्ग पर लगाते हुए उनके लिए यह भी निर्देश किया कि 'जुआ मत खेलो' 'खेती करो' अक्षर्मा दीव्य: कृषिमित्कृषस्व।[26]

ऋग्वेद में कृषि योग्य भूमि के अनेक रूपों का वर्णन हुआ है। ऋग्वेद और अथर्ववेद आदि के अनेक स्थलों पर कृषि योग्य भूमि को 'उर्वरा' या 'क्षेत्र' कहा गया है और उसमें खाद (शकन् या करीष) का उपयोग करने तथा सिंचाई (खनित्र) की व्यवस्था का निर्देश किया गया है।[27] ऋग्वेद एवं अथर्ववेद से ज्ञात होता है कि उस समय कृषि की सिंचाई की समुचित व्यवस्था थी।[28] नदी और कूप दोनों से सिंचाई की जाती थी। कृषि को अधिकाधिक उपजाऊ बनाने के लिये सिंचाई के अतिरिक्त खाद की भी उत्तम व्यवस्था थी।[29]

उपजाऊ भूमि के अतिरिक्त बंजर या अनुपजाऊ भूमि की अलग पहचान थी। विभिन्न ग्रन्थों में 'खिल' या 'खिल्य' शब्दों से ऐसी बंजर या चरागाह योग्य भूमि का उल्लेख हुआ है जो कृषि योग्य भूमि के बीच में स्थित होती थी।[30] कृषि कार्य की उपयोगिता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि आर्य जीवन में कृषि कार्य से सम्बन्धित जोताई-बोचाई, हल, बैल, जुआड़, हँसिया, गाड़ी, नाद, गोलाशा, प्रस्थर, कुठार, लौहदात्र (वसूला) आदि विभिन्न प्रकार की सामग्री उपयोग में लाई जाती थी।[31] वैदिक युग में विभिन्न प्रकार के अन्नों के उत्पादन की जानकारी अनेक स्रोतों से प्राप्त होती है। अन्न के दस प्रकार बताये गये हैं- चावल (व्रीहि), जौ (यवाः), तिल (तिलाः), माष (माषाः), सरसों, राई कोटि के धान्य अणु-प्रियंगवः, ज्वार (गोधूमाः), मसूर (मसूराः), खल, कुल।[32] खाद्यानों में गेहूँ का प्रमुख स्थान था। वैदिक युग में ईख (इक्षु) का उल्लेख हुआ है।[33] किन्तु इन सन्दर्भों से यह नहीं स्पष्ट होता कि ईख की खेती होती थी या वह स्वयं उगता था। अनाज बोने की भिन्न-भिन्न ऋतुओं का विशिष्ट वर्णन किया गया है।[34] इससे पता

लगता है कि बीज बोने का समय आजकल के समान ही था। फसलें साल में दो बार बोई जाती थी। आजकल की ही भाँति उस समय भी फसलों को हानि पहुँचाने वाले कीड़ों की समस्या उपस्थित थी साथ ही अवर्षण तथा अतिवर्षण से भी खेती को हानि पहुँचती थी। खेती की रक्षा के लिये कृषि नाशक कीड़ों से सुरक्षा के भी उपाय बताये गये हैं।

भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व, उत्तराधिकार तथा उसके अविभाजन सम्बन्धी निर्देशों एवं नियमों का वैदिक युग में अत्यधिक महत्व था।[35] भूमि उपहार या दान में नहीं दी जाती थी तथा परिवार के मुखिया की आज्ञा के बिना उसका विक्रय भी नहीं हो सकता था।[36] यद्यपि 'शतपथ ब्राह्मण' में ब्राह्मणों को भूमि दान देने का उल्लेख हुआ है।[37] किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि विशेष सम्पत्ति होने के कारण भूमि का दिया जाना असाधारण परिस्थिति में ही सम्भव था। तैत्तिरीय ब्राह्मण से पता चलता है कि सम्पत्ति के विभाजन, विनिमय तथा वितरण में भूमि की अपेक्षा पशुओं को देने की व्यवस्था थी।[38]

वैदिक आर्यों के लिये कृषि के अतिरिक्त पशुपालन भी जीवन- निर्वाह का प्रधान साधन था। आर्यों के जीवन में गाय का विशेष स्थान था। गाय का दूध आर्यों के भोजनालयों की एक प्रधान वस्तु थी। उस समय किसी की धन-सम्पत्ति की माप उसकी गायों की संख्या से की जाती थी। लेन-देन, व्यवहार तथा क्रय-विक्रय के लिये विनिमय का मुख्य माध्यम गाय ही थी। बैलों से खेती का काम लिया जाता था। ऋग्वेद के 'अरण्यानी सूक्त' से यह ज्ञात होता है कि आज की

भाँति वेदयुगीन भारत में भी मनुष्य में पशु-पक्षियों से प्रेम था और वे (पशु-पक्षी) उनके लिये अनेक तरह से उपयोगी थे। वेदों तथा परवर्ती वैदिक ग्रन्थों में अनेक प्रकार के पशु-पक्षियों का उल्लेख हुआ है।[39] उपलब्ध प्रमुख पशुओं के नाम हैं- गो. अश्व, अश्वतर (खच्चर), मेष, महिष, उष्ट्र छाग, अन गर्दभ, हस्ती, व्याघ्र, ब्रूक, सिंह, कुक्कर, वृष, गौर मृग, हरिण, कस्तूरी मृग, कृष्णसार मृग और वराह पशु-पक्षी आर्य जीवन के अभित्र अंग थे तथा सिंह को छोड़कर प्रायः सभी पालतू पशु होते थे।

हल चलाने तथा गाड़ी खींचने के लिये बैलों तथा अश्वों को विशेष रूप से उपयोग में लाया जाता था। पशुओं में कुत्ते का अनेक दृष्टियों से महत्त्व था। वैदिक युग में कुत्ते की स्वामिभक्ति के अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं। इन्द्र के विश्वासपात्र 'सरमा' नामक कुत्ते का ऋग्वेद में उल्लेख हुआ है।[40] भेड़ों का प्रमुख उपयोग ऊन था, इसीलिये उन्हें ऋग्वेद में 'ऊणीवती' कहा गया है।[41] ऊन के वस्त्रों का वेदों तथा वैदिक साहित्य में अनेक बार उल्लेख हुआ है। ऋग्वेद में गान्धार की भेड़, ऊन के लिये प्रसिद्ध मानी गई है।[42]

जिन पशु-पक्षियों का वर्णन वैदिक भारत के संदर्भ में हुआ है, वे आज भी उसी रूप में विद्यमान हैं पशु वैदिक आर्यों के दैनिक उपयोग के सहचर थे। वे धार्मिक ही नहीं, आर्थिक जीवन के भी अभिन्न अंग थे। सारतः वैदिक आर्यों के आर्थिक जीवन का इतिहास उन्हें शिष्ट, सभ्य तथा सम्पन्न सिद्ध करने के लिये पर्याप्त प्रमाण माना जा सकता है। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि वैदिक युगीन भारत की आर्थिक स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ एवं सुव्यवस्थित थी क्योंकि प्रत्येक क्षेत्र में आर्य आर्थिक उन्नति प्रगति कर चुके थे।

सन्दर्भ

1. ऋग्वेद ९/११२/मंत्र-१-३
2. ऋग्वेद १/१००/मंत्र -१०
3. अथर्ववेद अमित्रक्षायन सूक्त, ४/२२/मंत्र-२
4. शांखायन आरण्यक १३/१
5. अथर्ववेद १२/१२/मंत्र-४४
6. ऋग्वेद ५/२७/मंत्र-१२
7. ऋग्वेद, मण्डल २/ सूक्त ३३/मंत्र-१०
8. ऋग्वेद, मण्डल ८/ सूक्त २/मंत्र-४१
9. केदारखण्ड ८/४१
10. ऋग्वेद ८/४६/मंत्र-१३
11. ऋग्वेद ४/२४/९
12. ऋग्वेद ७/८८/३, १/११६/३ २/५८/३
13. ऋग्वेद १०/१३६/५, ९/३३/६, १०/४७३
14. ऋग्वेद १/५६/२,४/५५/६
15. ऋग्वेद १/१३१/२ आदि, अथर्ववेद २३६/५ आदि, तैत्तिरीय संहिता ५/३/१०/१, वाजसनेयी संहिता १०/१९. ऐतरेय ब्राह्मण ४/१३ आदि, शतपथ ब्राह्मण १/८/१/४ आदि।
16. ऋग्वेद १०/१५५/३
17. अथर्ववेद २०/२२७/३, शतपथ १०/४/१/१, गोपथ २/३/६
18. ऋग्वेद १/१२६/४
19. अथर्ववेद ४/१०/१,३
20. अथर्ववेद ८/४७/१७,६/४६/३
21. ऋग्वेद ८/६६/१०
22. निरुक्त ६/२७
23. ऋग्वेद १/५२/११ आदि

24. ऋग्वेद १/१६४/३३
25. ऋग्वेद १०/३४/१
26. ऋग्वेद १०/३४/१३
27. ऋग्वेद ८/६/४८ आदि, अथर्ववेद ६/९/११ आदि।
28. ऋग्वेद ७/४९/२, अथर्ववेद १/६/४, १९/२/२
29. अथर्ववेद २/१४/३, ४ आदि
30. ऋग्वेद ६/२८/२, आदि, अथर्ववेद ७/१५/४, शतपथ ब्राह्मण ८/३/४/९
31. ऋग्वेद १०/१०१/२-११
32. वाजसनेयि संहिता १८/१२, बृहदारण्यक उपनिषद् ६/३/२२
33. अथर्ववेद १/३४/५, मैत्रायणी संहिता ३/७९,४/२/९, वाजसनेयि संहिता २५/१
34. तैत्तिरीय संहिता ७/२/१०/२
35. शतपथ ब्राह्मण २/१/१/४
36. शतपथ ब्राह्मण २/१/१/४
37. शतपथ ब्राह्मण १३/६/२१८
38. तैत्तिरीय ब्राह्मण ३/१/९/४
39. ऋग्वेद १/६४/७ ८/६/५४९, १०/१०७/९. १०/१४६/६, ६,२८ आदि
40. ऋग्वेद १/६२/३
41. ऋग्वेद ८/६७/४
42. ऋग्वेद ४२/२. ५/५२/९